

संवर्द्धित-विकास एवं चुनौती

✧ प्रोफेसर एस.के. शाह

● डॉ. महेश कुमार परदेसी

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ होता है (परि + आवरण) बाह्य आवरण, जिसका अर्थ सामान्यतया पृथ्वी के बाह्य आवरण से लगाया जाता है। बाद में क्रमशः शब्द की विशालता एवं व्यापकता बढ़ती चली गई तब इसके मूल स्वरूप में भी परिवर्तन आया और इसके अर्थ ने व्यापकता ग्रहण की, इस स्थिति तक पहुँचने के उपरान्त पर्यावरण का सामान्य अर्थ भूमि, जल और वायु से लगाया जाने लगा। किन्तु वर्तमान समय में पर्यावरण का अर्थ भूमि-जल-वायु के आपसी संबंधों तक सीमित न होकर प्रकृतिजन्य परिवर्तन (भोजन, खान-पान, रहन-सहन, संस्कृति-सभ्यता) तक को अपने में समाहित कर चुका है।

पर्यावरण संरक्षण से आशय पर्यावरण को संरक्षित रखना है, जबकि पर्यावरण संवर्धन अधिक विशेषता एवं व्यापकता युक्त है। क्योंकि वर्तमान परिपेक्ष्य में संवर्धन अत्यावश्यक आवश्यकता बन चुका है। प्रकृतिजन्य असन्तुलनों से उत्पन्न परिस्थितिकीय असामान्यता को समाप्त कर सामंजस्यता स्थापित करने व करवाने का प्रयास ही संवर्धन है। (उदा. वृक्षारोपण, पानी संग्रहण, प्रदूषण कम करने के प्रयास)

भारत देश के संबंध में पर्यावरण के सामंजस्य की कोशिशें कमतर हैं परन्तु बिगाड़ने वाली ताकतें अधिक हैं। हम बिगाड़ते परिदृश्य का मूल्यांकन करने के बजाए हाथ बाँधकर आँखे मूँदे हुए बैठे हैं। ऐसा हम तथाकथित आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की तर्ज पर कर रहे हैं। पिछले 30 दशकों का अनुभव तो साफ तौर पर दर्शाता है कि बगैर उचित पर्यावरण संवर्धन के हम उचित आर्थिक विकास कर ही नहीं सकते हैं। व्यवहारिक स्वरूप में आज पर्यावरण निरंतर बिगाड़ता जा रहा है, इसका परिणाम यह हो रहा है कि समाज में आर्थिक असमानता बजाए कम होने के और गहरी होती जा रही है। पर्यावरण और जन जीवन (समाज) एक दूसरे से जुड़ी चीजें हैं। अतः यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि बिगाड़ता पर्यावरण और सामाजिक अन्याय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आर्थिक और सामाजिक विकास का स्वरूप हम कैसा चुने यह समाज की सोच पर निर्भर है। विकास के नाम पर हम पर्यावरण संवर्धन चाहते हैं अथवा और अधिक बिगाड़।

जनसामान्य के लिए पर्यावरण से आशय लोकलुभावन, सुहावनी प्राकृतिक चीजों का शौकिया संरक्षण नहीं वरन् एक ऐसा विस्तृत फैला हुआ संसाधन है, जिस पर उसकी रोजमर्रा की आर्थिक जिंदगी, सामाजिक उन्नति एवं आध्यात्मिक प्रेरणा टिकी हुई है।

भारत जैसे सघन आबादी वाले गरीब मुल्क में पर्यावरण के प्रत्येक अवयव पर न जाने कितने तहर के लोगों (समूहों) का अस्तित्व टिका हुआ है। जब भी पर्यावरण का ऐसा कोई अवयव विघटित होता है, बर्बाद होता है अथवा समाज का शक्तिशाली वर्ग उस पर अपना अधिपत्य जमा लेता है, तो उससे वंचित होने वाला कमजोर वर्ग (Weaker section) पहले से ज्यादा कमजोर, बेसहारा और गरीब बनता जाता है। उदाहरणार्थ तेजी से समाप्त होते जा रहे वनक्षेत्र, चारागाह, नदियों, समुद्र के तटवर्ती क्षेत्र जहाँ प्रदूषण से न सिर्फ लाखों आदिवासियों, घुमंतु लोगों और मछुआरों की आर्थिक स्थिति बिगड़ी है, बल्कि उन पर तो सामाजिक और सांस्कृतिक मृत्यु की छाया मंडराने लगी है। ऐसे हिम्मती मेहनती लोग जो एक जमाने में उम्दा, स्वालंबी जीवन बिताते थे, आज भूमिहीन मजदूर बनकर रोजी-रोटी के लिए दर-दर भटकने को मजबूर हो गये हैं। आज का तथाकथित विकास एक ऐसा माध्यम (हथियार) बन गया है, जिसके जरिए अमीर और ताकतवर वर्ग प्राकृतिक संसाधनों को अपने कब्जे में करता जा रहा है। इस षड़यन्त्र में आधुनिक तकनीक उनकी मदद कर रही है।

विकास का वर्तमान ढाँचा न केवल पर्यावरण के घटकों को बर्बाद कर रहा है वरन् देश की आबादी के कमजोर समूहों को अपनी चपेट में लेता जा रहा है। आज की तथाकथित विकास प्रक्रिया का दुष्परिणाम बढ़ता हुआ "उपभोक्तावाद" है, जो समूह (समाज) को पर्यावरण से बजाए जोड़ने के तोड़ता है। इस टूटन का उदाहरण स्तनपान कराने जैसी निहायत सहज और जरूरी प्राकृतिक आदत भी विज्ञापन बाजी के कारण तोड़ दी गई है।

दुनियाभर के कुछ मुठ्ठीभर लोग ज्यादा से ज्यादा उपभोग करने वाली संस्कृति को जब अपनाते लगते हैं, तब देश के भीतर और अन्य देशों में आपस में भी उस दिशा में एक अंधी दौड़ को बढ़ावा मिलता है, समूह (समाज) के पास विकल्प चुनने का अभाव उत्पन्न हो जाता है। और हर आदमी इस दौड़ में किसी न किसी ढंग से शामिल होने के लिए अभिशप्त बन जाता है।

विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में बढ़ती योग्यता ने हमें दुनिया में सम्मानजनक स्थान अवश्य दिलाया है। तथापि आज समाज पर विज्ञान और तकनीक की मनमानी हावी है। उदा. भौतिकवाद में फँसा नवयुवक स्कूटर, रेफ्रिजरेटर न मिलने पर अपनी पत्नी को जला देता है। जबकि विज्ञान और तकनीक

✧ विभागाध्यक्ष, भूगर्भ शास्त्र, शास. महाविद्यालय, झाबुआ

★ सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ

का प्रयोग समाज में स्थापित आदर्श मूल्यों Norms से संचालित होना चाहिये।

वर्तमान संस्कृति में विकास का आशय भौतिक वस्तुओं के उत्पादन और खपत में बढ़ोत्तरी बन गया है। जबकि वास्तव में "विकास" ऐसा "उत्पाद" नहीं है। जिसे आप आर्थिक उन्नति से हासिल कर लें। विकास वह प्रक्रिया है जो हर स्तर पर समाज, व्यक्ति और देश को पहले से अधिक स्वावलंबी बनाता है और अपना भविष्य तय करने की अधिक आजादी देता है। देश का ऐसा स्वावलंबी होना तब तक संभव नहीं है जब तक व्यक्ति-व्यक्ति के बीच और व्यक्ति तथा पर्यावरण के बीच संबंध मधुर और मजबूत नहीं हो जाते।

। ढक&इस स्तर को प्राप्त करने के लिए कुछ सुझाव देना समीचीन होगा—

1. वर्तमान कालिक उत्पादन के तरीके, उत्पाद और खपत के ढाँचे, शिक्षा प्रणाली, जन सेवाओं और पर्यावरण के संवर्धन में बुनियादी परिवर्तन करने होंगे।
2. रासायनिक खाद के बजाय जैविक खाद के उपयोग में अधिक से अधिक जानकारी दी जाये।
3. पानी के अत्यधिक दोहन को रोका जाना चाहिए।

विकास की संतुलित शैली ही समाज में स्त्री और पुरुष

को एक सा दर्जा दे सकेगी, अतः यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि वर्तमान में संवर्धित विकास की प्रक्रिया एक नई संस्कृति की माँग करती है, जिसकी प्रमुख परिकल्पनाएँ निम्न हैं —

- (1) नैसर्गिक न्याय गरीब और अमीर के बीच की खाई को पाटना और हर स्तर पर स्त्री एवं पुरुष के बीच सत्ता का उचित बँटवारा करना।
- (2) प्राकृति संसाधनों का सामूहिक उपयोग एवं सामूहिक भागीदारी सुनिश्चित करना।
- (3) "उत्पादों" के उपभोग के ढाँचे के प्रति बेहद सावधान रहना।
- (4) दुनिया की विभिन्न संस्कृतियों और जीवन-शैली के प्रति समान आदर भाव रखना होगा।
- (5) समाज में समाज के हर स्तर पर अधिकाधिक स्वावलम्बन का लक्ष्य रखकर मन/वचन/कर्म से सार्थक प्रयास करना होगा।

वस्तुतः आज हमें एक संतुलित, तर्कसंगत और संवर्धित पर्यावरण से युक्त "विकास" की नवीन शैली की आवश्यकता है। "विकास" की ऐसी शैली विकसित कर लागू करना आज के दौर की सबसे बड़ी बौद्धिक और राजनैतिक चुनौती है।

। ढक&इ

1. राठौर उमेश "पर्यावरण प्रदूषण के दुष्प्रभाव", तक्षशिला प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली 1996
2. सोनी वेदप्रकाश "पर्यावरण संरक्षण", मयंक प्रकाशन गृह नवीन शाहदरा नई दिल्ली 2002